SAC के पेपर

“इस्कॉन में ब्रह्म-गायत्री-मंत्र”

को प्रारंभिक जवाब

द्वारा,
श्यामसुंदर दास (ACBSP),
ज्योतिषी
Shyamasundara1976@gmail.com

शास्त्रचक्षुः परिषत्
की ओर से

सारोद्धार

कृष्ण की वैदिक सभ्यता में, उपनयन -- पवित्र उपवीत और ब्रह्म-गायत्री मन्त्र में दीक्षा -- विशेष रूप से योग्य पुरुषों को प्रदान किया जाता है; जिसमें से महिलाओं और शूद्रों को बाहर रखा जाता है। शुरुआती दिनों में, श्रील प्रभुपाद ने कुछ नाराज महिला शिष्यों को, जिन्होंने द्वितीय दीक्षा नहीं मिलने पर विद्रोह किया था, उनको शांत करने के लिए, अपनी महला शिष्यओं को ब्रह्म-गायत्री देने की प्रथा शुरु की थी लेकिन उन्हें पवित्र उपवीत दिये बिना, जिसका अर्थ था कि वे वास्तविक ब्राह्मण नहीं थी । जैसे-जैसे समय बीतता गया और वरिष्ठ भक्तों को कृष्ण की वैदिक संस्कृति के बारे में गहरा ज्ञान प्राप्त हुआ, उन्हें एहसास हुआ कि क्या हुआ था। कुछ लोग जो अब तक दीक्षा देने वाले गुरु बन गए थे, वे कृष्ण के मूल सिद्धन्तों पर लौट आए और दूसरी दीक्षा के समय अपनी महिला शिष्यों को ब्रह्म-गायत्री देना बंद कर दिया । वे पुरुष शिष्यों के साथ भी अधिक कठोर हो गए -- इसे केवल ब्राह्मण प्रवृत्ति वाले शिष्यों के लिए ही आरक्षित कर दिया। इस बदलाव ने उन लोगों को चुनौति दी जो इस्कॉन में स्त्री-दीक्षा-गुरु और अन्य नारी-स्वतन्त्रवादी मामलों को आगे बढ़ाने में रत हैं । नतीजतन, जीबीसी ने इस मामले पर मार्गदर्शन के लिए शास्त्रीय सलाहकार समिति (SAC) से संपर्क किया और SAC ने महिलाओं और अयोग्य पुरुषों को ब्रह्म-गायत्री प्रदान करने की मंजूरी देने के लिए अप्रसिद्धांतिक और धर्म विरुद्ध तर्क प्रदान किए।

यह निबंध SAC के पेपर की प्रारम्भिक प्रतिक्रिया या जवाब के रूप में प्रकाशित है। यहाँ , हम इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि SAC ने संशय समाधान कर वास्तविक अर्थ को समझने की कृष्ण की मूल पद्धति -- मीमांसा -- की उपेक्षा करते हुए संशय समाधान की अपनी नयी मनगढ़ंत पद्धति बनाई (जो पूर्व निर्धारित परिणाम देती है) । हम गुरु के कार्यों की व्याख्या करते समय उनके " मनोऽभिष्टम् " (मन की इच्छा) को समझने के महत्व पर जोर देते हैं, जिसका मूल अंततः शास्त्र में हैं । SAC हमारी दीक्षा प्रक्रिया को समझने में गलती करती है। चूँकि ब्रह्म-गायत्री हमारे दीक्षा प्रोटोकॉल का हिस्सा है, इसलिए हमें पहले यह समझना होगा कि हमारी दीक्षा प्रणाली कैसे काम करती है। इस प्रकार हम अपने संप्रदाय में दीक्षा के ढांचे का विश्लेषण करते हैं -- जिसमें भागवत, पांचरात्रिक और वैदिक परंपराओं के तत्व शामिल हैं।

फ़िर हम दिखाते हैं कि SAC ने उस मूलभूत प्रश्न को नजरअंदाज कर दिया जिस पर सब कुछ निर्भर है -- "श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने उपनयन की शुरुआत क्यों की ?" और, दिखाते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर मिलते ही SAC का पूरा तर्क ध्वस्त हो जाता है। हम जीबीसी के त्रुटिपूर्ण प्रस्तावों पर भी चर्चा करते हैं जो उन्होंने SAC के समीक्षा रहित पेपर पर आधारित किया था।

प्रिय महाराजों, प्रभुओं, और माताओं,

कृपया मेरे विनम्र प्रणाम स्वीकार करें ।

श्रील प्रभुपाद की जय ।

SAC के पेपर -- "इस्कॉन में ब्रह्म-गायत्री मंत्र"-- पर प्रतिक्रिया देने वाले कई भागों में से यह पहला है ।[1] इस आरम्भिक आलोचना में, मैं उनके उस व्यापक 177 पृष्ठ निबंध के बिंदु-दर-बिंदु खंडन पर ध्यान नहीं दूँगा , जो एक टीम के दो साल के प्रयास का उत्पाद है। शास्त्र-चक्षुः-परिषत् [2] से वे विस्तृत प्रतिक्रियाएँ एक के बाद एक अनुसरण करेंगी। इसके बजाय, मैं इसके कुछ चुनिंदा बिंदुओं का विश्लेषण करके इस बात पर प्रकाश डालूँगा कि कि किस प्रकार सामान्य तौर पर उनकी (SAC की) स्थिति बहुत ही कमज़ोर है ।

---

[1] https://archive.org/details/brahma-gayatri-sac-complete_202401

[2] उन लोगों की एक सभा जिनकी आंखें *शास्त्र हैं*। [जो *शास्त्रों के माध्यम से देखते हैं*।]

प्रारम्भिक टिप्पणियाँ

शुरू करने से पहले मैं "हेर्मेनेयुटिक्स" शब्द के बारे में कुछ प्रारम्भिक टिप्पणियाँ करना चाहूँगा जिसे SAC अपने मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में उपयोग करता है। "हेर्मेनेयुटिक्स" मूल रूप से एक ईसाई अवधारणा है जो मानव निर्मित अकादमिक विषयों के ढेर में बदल गयी है, जिसमें "क्वीर बाइबिल हेर्मेनेयुटिक्स,"[3] "लेस्बियन हेर्मेनेयुटिक्स,"[4] "मार्क्सवादी हेर्मेनेयुटिक्स,"[5] "फेमिनिस्ट हेर्मेनेयुटिक्स,"[6] "पोस्टमॉडर्न हेर्मेनेयुटिक्स,"[7] इत्यादि जैसे विविध मनगढ़ंत क्षेत्र

---

[3] https://blog.smu.edu/ot8317/queer-bible-hermeneutics-ot8317-at-perkins-school-of-theology/

[4] https://www.wjkbooks.com/Products/0334029589/when-deborah-met-jael-lesbian-biblical-hermeneutics.aspx

[5] https://academiccommons.columbia.edu/doi/10.7916/D8CJ8Q88

[6] https://academic.oup.com/edited-volume/41623/chapter-abstract/353456419?redirectedFrom=fulltext&login=false

[7] https://publish.iupress.indiana.edu/projects/the-hermeneutics-of-postmodernity

शामिल हैं।[8] यह दृढ़ता से इंगित करता है कि अब्राह्मीक आस्थाओं और नास्तिक धर्मनिरपेक्ष अकादमिक शिक्षा जगत का प्रभाव SAC में घुस गया है। यह उनमें हमारे विश्वास को ठेस पहुँचाता है। SAC, जहाँ "एस" का अर्थ " शास्त्र" है, वैष्णव दर्शकों के लिए बने लेखों में म्लेच्छ और यवन अकादमी के शब्दों और भाषा का उपयोग क्यों करता है?

> प्रभुपाद को बड़ा डर था कि इस्कॉन के भक्त दिन ब दिन बाहरी प्रभावों से ज्यादा प्रभावित होते जायेंगे -- ऐसे प्रभाव जो हमारे संप्रदाय की शुद्धभक्ति की शिक्षाओं के अनुरूप नहीं है ।9

पूर्व निर्धारित (नारीवादी) उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए "हेर्मेनेयुटिक्स" की एक कस्टम-निर्मित प्रणाली बनाने के लिए SAC की पहले भी आलोचना की गई है इस पेपर में -- “शास्त्रिक सलाहकार परिषद (SAC) की हेर्मेनेयुटिक्स प्रणाली की आलोचना” [10]

---

[8] जिसे यवन "हर्मेनेयुटिक्स" कहते हैं, उसकी कई किस्मों की लंबी चर्चा के लिए देखें https://plato.stanford.edu/entries/hermeneutics/

[9] हरि सौरी दास, एक ट्रान्सेंडैंटल डायरी: ट्रेवल्स विद हिज डिवाइन ग्रेस ए। सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद, जून 1976 - अगस्त 1976 (अलाचुआ, फ्लोरिडा: लोटस इम्प्रिंट्स, 1994), 534.

[10] https://tinyurl.com/sac-critique-herm

कृष्ण की वैदिक संस्कृति में, संशय निवारण करके वास्तविक अर्थ को समझने की (समन्वय की) एक प्रणाली पहले से ही मौजूद है -- मीमांसा -- जिसे कृष्ण ने बनाया है। मीमांसा की विशेष स्थिति के बारे में निम्नलिखित स्पष्टीकरण मेरे अप्रकाशित लेख -- क्या "वैदिक ज्योतिष" शब्द एक मिथ्यानाम है? -- इससे उद्धृत है:

> कलियुग में वैदिक अध्ययन की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, न्याय (एक तर्क प्रणाली जो वैदिक अधिकार को मान्यता देती है) और मीमांसा जैसे विशेष विषयों का उपयोग किया जाता था वेदों के अर्थ को समझने के लिए । केन -उपनिषद् (4.8) का दावा है कि संपूर्ण ज्ञान के लिए तीन तत्वों की आवश्यकता होती है: वेद, वेदांग और सत्य । जबकि दूसरे अनुवादक "सत्य" शब्द का अनुवाद "सत्य" ही कर देते है, श्रीपाद मध्वाचार्य, अपनी टिप्पणी में,[11] स्थापित करते हैं कि "सत्य" शब्द यहाँ मीमांसा को संदर्भित करता है; इसे स्थापित करने के लिये वे शब्द निर्णय नामक ग्रन्थ का उल्लेख करते हैं । इस प्रकार, स्वयं वेद के अनुसार (केन उपनिषद् के अनुसार) मीमांसा और वेदांग दोनों ही वेद को समझने के लिए अति महत्वपूर्ण हैं । वैदिक

[11] श्रीश चंद्र वसु, उपनिषद, माधवाचार्य की टिप्पणियों के साथ, भाग 1, ईश, केना, कठ, प्रश्न, मुंडक, और माण्डुक्य, अनुवाद. श्रीश चंद्र वसु (इलाहाबाद: पाणिनि कार्यालय, 1909). या, https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/kena-upanishad-madhva-commentary/d/doc486104.html

ग्रंथों को समझने में, समन्वय[12] प्राप्त करने के लिए इन तीनों घटकों का उपयोग किया जाना अनिवार्य है -- और इस प्रकार ही वास्तव में वैदिक ज्ञान को समझना चाहिए। यह दिखाता है कि वेद, वेदांग और न्याय-मीमांसा ग्रन्थ हमेशा से साथ में ही मौजूद हैं ।

जब जैमिनी ऋषि द्वारा मीमांसा को वेदों के कर्म-खंड पर लागू किया गया तो इसे पूर्व मीमांसा या कर्म मीमांसा कहा गया और इसका उपयोग वेदों के ब्राह्मण खंड में वर्णित यज्ञों को ठीक से समझने के लिए किया जाता है। और जब व्यासदेव द्वारा मीमांसा को वेदों के ज्ञान-खंड (अरण्यकों और उपनिषदों) पर लागू किया गया तो इसे उत्तर मीमांसा या वेदांत सूत्र के रूप में जाना गया । विशेष रूप से, मीमांसा के सिद्धांत धर्मशास्त्र सहित विभिन्न विषयों पर लागू होते हैं, जिसका उदाहरण याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टिप्पणी से मिलता है ।

फलित ज्योतिष सहित अन्य विशिष्ट विषय वेदांगों का हिस्सा थे । इस प्रकार, जैसा कि हम देखेंगे, ज्योतिष में खगोल विज्ञान और फलित ज्योतिष दोनों शामिल थे क्योंकि ज्योतिष, "वेद की आँख " के रूप में, अतीत, वर्तमान और भविष्य को देखने के लिए था।

हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि यद्यपि न्याय, मीमांसा, और व्याकरण जैसे विषय वेद संहिताओं में सीधे

---

[12] संस्कृत में "समन्वय" शब्द विरोधाभासों को सुलझाने और सुसंगतता और एकवाक्यता बनाने के लिए विभिन्न तत्वों या विचारों को एक साथ लाने या समन्वयित करने के कार्य का प्रतीक है। इसका अर्थ एक सामान्य लक्ष्य या उद्देश्य के प्रति विभिन्न पहलुओं की स्थिरता या संरेखण भी हो सकता है ।

> बताएँ या विस्तार से समझाएँ नहीं गये तथापि उन्हें वैदिक ही समझा जाता है क्योंकि उनके बिना वेदों को नहीं समझा जा सकता । इस प्रकार न्याय और मीमांसा जैसे विषयों को वेदों और वेदांगों के साथ वैदिक विद्याओं के रूप में गिना जाता है ।[13] ठीक इसी प्रकार, ज्योतिष (काल विद्या) समय का विज्ञान, भी वेदों को समझने के लिए आवश्यक था क्योंकि काल अर्थात् टाइम फैक्टर भगवान की ऊर्जाओं में से एक है,[14] जैसा कि हमने पहले देखा। काल शब्द का तात्पर्य केवल समय के माप से कहीं अधिक है।

जब कृष्ण ने पहले से ही एक आदर्श प्रणाली (मीमांसा) बनाई है, तो कुछ अलग प्रणाली क्यों उपयोग करें? जब तक कि कोई गुप्त उद्देश्य न हो ।

अपने पेपर के पृष्ठ 9 पर SAC ने हमें सूचित किया है कि उनका एक हेर्मेनेयुटिक्स साधन है, "हमें कई अलग अलग दृष्टिकोणों से शास्त्र को समझना चाहिए।" और यद्यपि श्रील प्रभुपाद ने जरुर से कहा था:

> हमारा कृष्ण दर्शन इतना शानदार है कि आप
> एक ही विचार को कई दृष्टि कोणों से समझा

---

[13] मीमांसा, न्याय, और वेदांगों का उल्लेख विष्णु पुराण (3.6.28-29) और ब्रह्माण्ड पुराण (1.2.35.87-89) में 14 (या कभी-कभी 18) विद्याओं से संबंधित बताया गया है। और मत्स्य पुराण (3.2-4, 53.6) में कहा गया है कि मीमांसा और न्याय शास्त्र वेदों, वेदांगों, और पुराणों के साथ सीधे नारायण की श्वास से उत्पन्न हुए हैं ।

[14] उदाहरण के लिए, भगवद-गीता (11.32) और श्रीमद-भागवतम (3.26.16-18) देखें ।

> सकते हैं और इस प्रकार सत्य का आनंद ले सकते हैं और दूसरों को उनकी समझ बढ़ाने में मदद कर सकते हैं। (पत्र: हयग्रीव, 18 जनवरी, 1972)

यदि ऐसा है तो फिर क्यों SAC ने 177 पन्ने का पेपर लिखने का २-साल का कठोर परिश्रम किया इस दृष्टिकोण का खंडन करने के लिये कि स्त्रियों को ब्रह्म-गायत्री नहीं मिलनी चाहिये? "कोई भी दृष्टिकोण चलेगा लेकिन बस ये वाला नहीं ।" सीधे शब्दों में रखें तो SAC द्वारा "कई दृष्टिकोण" की चाल का उपयोग दिखाता है कि वे स्पष्ट को नजरअंदाज करके, जटिल अप्रत्यक्ष तरिकों को चुन करके, सच्चाई से दूर पूर्व निर्धारित परिणाम प्राप्त करना चाहते है। यह विशेष रूप से गंभीर है जब SAC द्वारा प्रस्तावित "कई दृष्टिकोण/कोण" हमारे संस्थापक-आचार्य सहित हमारे आचार्यों की मानक और समय-सम्मानित प्रथाओं से विचलित होते हैं ।

SAC ने अपने "हेर्मेनेयुटिक्स" का उपयोग करके श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के मनोऽभीष्ट और उद्देश्य को नजरअंदाज कर दिया है। अब हम SAC के पेपर की आलोचना शुरु करेंगे।

SAC के तर्कों की आलोचना

..और जो शब्दों की बाज़ीगरी में बहुत होशियार होंगे विद्वान माने जायेंग... और जो धृष्ट है उसको सच्चा माना जाएगा। (कलियुग के लक्षण. श्रीमद्भागवतम् 12.2.4,6)

इस विश्लेषण में, हम अपनी आलोचना को एक मुख्य बिंदु तक सीमित रखेंगे जो उनकी तर्क-श्रेणी को ध्वस्त करने के लिये पर्याप्त है ।। सबसे पहले, कुछ पृष्ठभूमि की जानकारी.

॥ मनोऽभीष्टम् ॥

श्रीचैतन्य मनोऽभीष्टम्

स्थापितम् येन भूतले ।

स्वयं रूपः कदा मह्यम्

ददाति स्व-पदान्तिकम् ॥

"जिनके द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु की **मन की इच्छा** को इस भूतल पर स्थापित किया गया है ऐसे श्रील रूप गोस्वामी कब मुझे अपने चरणकमलों में आश्रय देंगे ।"

गुरु की इच्छाओं को पूरा करने के लिए शिष्य के लिए गुरु के मन को समझना एक महत्वपूर्ण गुण है। उत्तम स्तर का शिष्य गुरु के स्पष्ट निर्देश के बिना ही उनकी इच्छाओं को हृदय से ही समझ लेता है और क्रियान्वित करता है। द्वितीय श्रेणी के शिष्य को कार्य करने से पहले गुरु की इच्छाओं पर स्पष्ट मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। तीसरी श्रेणी का शिष्य निर्देश दिए जाने पर भी अयोग्य रहता है और गुरु की इच्छाओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है। जहाँ तक चतुर्थ श्रेणी के शिष्य की

बात है, गुरु द्वारा स्पष्ट रूप से निर्देशित किए जाने के बाद भी उसकी अवज्ञा बनी रहती है; वह काम नहीं करता ।[15]

हम सदैव उदाहरण देखकर ही नहीं समझ सकते। यदि कोई प्रामाणिक गुरु कुछ करता है तो उसे अंततः शास्त्र और आचार्यों (साधुओं) की शिक्षा के आधार पर समझा जाना चाहिए। यदि हम सीधे अपने गुरु से परामर्श करने की स्थिति में नहीं हैं और ऐसी स्थिति में हमें कोई बड़ा निर्णय लेना पड़ रहा है जो हमारे लिए अपरिचित है (या हमारे गुरु द्वारा उल्लेखित नहीं किया गया) तो हमें शास्त्र से मार्गदर्शन लेना ही होगा। क्यों? क्योंकि यहीं से तो आचार्यों को भी मार्गदर्शन मिला है।[16] अन्यथा, हम ऐसे बन जायेंगे:

गुरु और उसके मूर्ख शिष्य

एक बार गुरु अपने शिष्यों के साथ गंगा स्नान के लिए गये । पानी में उतरने से पहले गुरु ने अपना कीमती सामान कपड़े में लपेटकर और रेत में गाड़कर सुरक्षित कर लिया। उस स्थान को चिन्हित करने के लिए उसने एक छोटी सी लकड़ी जमीन में गाड़ दी। स्नान के बाद, उसने अपना

[15] उदाहरण के लिए वाल्मीकी रामायण 6.1.7-9 देखें

[16] यदि कोई बात शास्त्र में वर्णित नहीं है तो हमें कृष्ण की वैदिक संस्कृति में प्रशिक्षित ऐसे सदाचारी पुरुषों के उदाहरण और आचरण का अनुसरण करने के लिए निर्देशित किया जाता है। श्रीमद-भागवतम (11.19.17) और मनु स्मृति 2.6 देखें । यह सिद्धांत तब सबसे महत्वपूर्ण होता है जब किसी कार्य का शास्त्रीय आधार खो जाता है या भुला दिया जाता है ।

सामान निकालने का प्रयास किया, लेकिन वह भ्रमित हो गया क्योंकि नदी के किनारे अनगिनत लकड़ियाँ गड़ी हुई थीं। उन्होंने अपने शिष्यों से पूछा कि क्या हुआ। शिष्यों ने उत्तर दिया, "गुरुजी, हमने आपको रेत में लकड़ी गाड़ते हुए देखा, इसलिए हमने आपका अनुसरण किया और वैसा ही किया।" मूर्ख शिष्यों ने गुरु के उद्देश्य को जाने बिना नकल करके गुरु का काम नष्ट कर दिया।

कहानी का सार: गुरु से निकटता और उनकी गतिविधियों को देखना ही पर्याप्त नहीं है। व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि उसके कार्यों का आधार क्या है और वह ऐसा क्यों करता है। आचार्य के कार्य का अंतिम आधार शास्त्र है । तो हमें शास्त्र के आधार पर समझना होगा ।

इसे प्रदर्शित करने के लिए श्रील प्रभुपाद ने बताया कि कैसे एक बार वह मायापुर में थे जब आश्रम में एक साँप पाया गया था । श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इसे मारने का आदेश दिया। प्रभुपाद को संदेह था कि एक साधु किसी प्राणी की हत्या का आदेश क्यों देगा और इससे उनके मन में संदेह रह गया। लेकिन, बाद में जब उन्होंने श्रीमद-भागवतम् (7.9.14) में पढ़ा जहाँ श्री प्रह्लाद ने कहा कि जब साँप या बिच्छू को मार दिया जाता है तो साधु भी प्रसन्न होते हैं, तब श्रील प्रभुपाद ने अपने सभी संदेह दूर कर दिए क्योंकि वे समझ गए थे कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का कार्य शास्त्र पर आधारित था।

एक गुरु तभी गुरु होता है जब वह शास्त्र का पालन करता है । एक साधु तभी साधु है जब वह शास्त्र का पालन करता है । एक आचार्य केवल तभी आचार्य होता है जब वह शास्त्र का पालन करता है ।

> साधु, शास्त्र , गुरु -- वे एक ही बात बोलेंगे । गुरु का अर्थ है जो शास्त्र के आधार पर बोलता है; अन्यथा वह गुरु नहीं है । (श्रीमद्भागवत 1.7.32-33 - 27 सितम्बर 1976, वृन्दावन)

और,

> श्रील नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं, साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, चित्तेते करिया/कार्य ऐक्य। साधु, गुरु और शास्त्र के वचनों का अध्ययन करके ही किसी भी चीज़ को वास्तविक मानना चाहिए। वास्तविक केंद्र शास्त्र है, प्रकट शास्त्र। यदि एक आध्यात्मिक गुरु शास्त्र के अनुसार नहीं बोलते, उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार, यदि कोई साधु व्यक्ति शास्त्र के अनुसार नहीं बोलता है, तो वह साधु व्यक्ति नहीं है। शास्त्र सभी का केंद्र है । (श्री चैतन्य-चरितामृत 2.20.352,ता)[17]

इसलिए जब तक हम गुरु के मन को, उनके कुछ करने के उद्देश्य को नहीं जानते, तब तक नकल करना खतरनाक है; हम मूर्ख शिष्य बन सकते हैं।

दीक्षा के प्रकार

आगे चलते हैं । चूँकि ब्रह्म-गायत्री हमारी दीक्षा प्रक्रिया का हिस्सा है, इसलिए हमें यह समझना चाहिए कि हमारी दीक्षा

---

[17] "ता" -- श्लोक के तात्पर्य को दर्शाता है ।

प्रणाली कैसे काम करती है। हमारे उद्देश्यों के लिए, दीक्षा के दो अलग-अलग प्रकार प्रासंगिक हैं: वैदिकी और पञ्चरात्रिकी, दोनों का अलग-अलग भाग है। यद्यपि सामान्य रूप से क्रम वैदिकी दीक्षा के बाद पञ्चरात्रिकी दीक्षा का होता है, उन्हें परस्पर या समवर्ती रूप से भी किया जा सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि ये दीक्षाएँ आजीवन होती हैं।

इनके अलावा, वैदिक-दीक्षा के अन्य रूप भी होते हैं, जैसे अग्निष्टोम या अश्वमेध जैसे विशिष्ट यज्ञों से पहले यजमान को दीक्षित करते हैं । इन यज्ञों की सीमित अवधि को देखते हुए, यह दीक्षा अस्थायी है, जो यज्ञ की समाप्ति पर अवभृथ/अवभृत-स्नान के साथ समाप्त होती है। इसी प्रकार, पञ्चरात्रिक यज्ञ दीक्षा की एक इसी प्रकार की श्रेणी है: कुछ अस्थायी हैं जबकि अन्य आजीवन हैं। आजीवन दीक्षा की श्रेणी चर्चा के लिए महत्वपूर्ण है और हम इस पर बाद में लौटेंगे।

भागवती दीक्षा ?

चूंकि हम मुख्य रूप से भागवत संप्रदाय हैं,[18] जो पवित्र नाम पर जोर देता है, तो भागवत दीक्षा के बारे में क्या? श्री चैतन्य-चरितामृत (2.15.108) हमें सूचित करता है कि पवित्र नाम का जप करने के लिए **किसी दीक्षा की आवश्यकता नहीं है ।**

---

[18] भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर, ब्राह्मण और वैष्णव, अनुवाद:- भूमिपति दास (नई दिल्ली: व्रजराज प्रेस, 1999), 90.

दीक्षा-पुरश्चर्या-विधि अपेक्षा न करे ।

जिह्वा-स्पर्शे आ-चांडाल सबरे उद्धारे

किसी को दीक्षा लेने या दीक्षा से पहले आवश्यक (पुरश्चर्या) गतिविधियों को निष्पादित करने की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति को बस अपने होठों से पवित्र नाम का उच्चारण करना है। इस प्रकार सबसे निचले (चांडाल) वर्ग के व्यक्ति का भी उद्धार किया जा सकता है।

और,

कृष्ण-मंत्र हईते हबे संसार-मोचन ।

कृष्ण-नाम हईते पाबे कृष्णेर चरण ॥

केवल कृष्ण के पवित्र नाम का जप करके व्यक्ति भौतिक अस्तित्व से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। निश्चित रूप से, केवल हरे कृष्ण मंत्र का जप करने से व्यक्ति भगवान के चरण कमलों के दर्शन कर सकेगा। (श्री चैतन्य-चरितामृत 1.7.73)

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि पवित्र नाम जप और कीर्तन के सम्बन्ध में कोई भागवत दीक्षा अथवा किसी भी प्रकार की दीक्षा नहीं है ।[19]

---

[19] गौड़ीय मठ के अनुयायियों में यह प्रचलित है कि श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने गौर-किशोर दास बाबाजी से "भागवती दीक्षा" प्राप्त की थी

लेकिन कुछ चेतावनियाँ हैं,

जैसा कि बृजवासी प्रभु ने अपने शिक्षाप्रद निबन्ध "चैतन्य-वैष्णव परिप्रेक्ष्य से हरे कृष्ण महा-मंत्र" में बताया है :[20]

> उपरोक्त कथनों से और विशेष रूप से चैतन्य-चरितामृत श्लोक (आदि 7.73) से जो निष्कर्ष निकलता है, वह यह है कि हरि-नाम-मंत्र बिल्कुल ये सभी परिणाम देता है: यह किसी के पापों को नष्ट कर देता है (गौण परिणाम रूप से-- यह "संसार-मोचन" है) और कृष्ण के साथ सम्बन्ध का दिव्य ज्ञान देता है (मुख्य परिणाम के रूप में - "कृष्णेर चरण")। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति हरि-नाम का जप और कीर्तन अंगीकार कर सकता है और मंत्र-दीक्षा (पञ्चरात्रिक-दीक्षा) की प्रक्रिया से गुजरे बिना भी परिणाम प्राप्त कर सकता है ।

। हालाँकि, नाम समान है किन्तु यह भागवती दीक्षा पवित्र नाम के जप के संबंध में नहीं अपितु शिक्षा परंपरा के संबंध में है । अधिक जानकारी के लिए देखें: भक्ति विकास स्वामी, श्री भक्तिसिद्धांत वैभव, खंड 2 (वल्लभ विद्यानगर, गुजरात: भक्ति विकास ट्रस्ट, 2010), 227.

[20] बृजबासी दास (कोस्त्यन्तिन पेरुन), 2022. "हरे कृष्ण महा-मंत्र, चैतन्य-वैष्णव परिप्रेक्ष्य से: वैष्णव अध्ययन जर्नल." जर्नल ऑफ वैष्णव स्टडीज 24 (2):216-60

https://archive.org/details/hare-krsna-maha-mantra-from-the-gv-perspective-by-brijabasi-prabhu_202401/page/n15/mode/1up

फिरभी यहाँ एक **अधिक सूक्ष्म विचार है,** जिसका उल्लेख विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्रीमद् -भागवतम् (6.2.9-10) पर अपनी टिप्पणी में किया है जो गुरु और दीक्षा के महत्व को और स्पष्ट करता है:

"कुछ लोगों की राय ऐसी है कि --- वे व्यक्ति जो भगवान् के नाम के अपराधी हैं, लेकिन उनमें कर्म, ज्ञान आदि की कोई प्रवृत्ति नहीं है; वे श्रवण, जप आदि द्वारा भक्ति सेवा में लगे हुए हैं, फिर भी उन्हें दीक्षा नहीं मिली है क्योंकि उन्होंने गुरु के चरण कमल की शरण नहीं ली है -- उन्हें भी वैष्णव नाम से सम्बोधित किया जाना चाहिए। वास्तव में, वैष्णव शब्द को पाणिनि के व्याकरण के "सास्य देवता" ("वह उसका देवता है") इस सूत्र से समझा जा सकता है; या फिर उस सूत्र से समझा जा सकता है जिसमें "भक्ति:" लिखा है ("वह उसकी भक्ति का आश्रय है"); इस प्रकार जिन्होंने अपनी दीक्षा से विष्णु को अपना देवता बनाया है और वे भी जिन्होंने अपनी पूजा के अभ्यास से विष्णु को अपनी पूजा की वस्तु बनाया है, दोनों को वैष्णव कहा जाता है, क्योंकि उनका उचित वर्णन करने के लिए कोई अन्य शब्द नहीं है। इन वैष्णवों के लिए भी, जैसा कि पहले वर्णित लोगों के लिए है, नरक आदि में कोई पतन नहीं है। --- लेकिन यह राय बहुत ठोस नहीं है; चूँकि "नृ-देहम् आद्यम" श्लोक के आरंभ में ही कहा गया है कि गुरु जहाज का चालक (कर्णधार) होता है, वे गुरु के बिना आसानी से भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकते। **इसलिए यह कहा जाता है**

कि केवल वहीं संत व्यक्ति जिन्होंने पिछले जन्म में गुरु के चरणों का आश्रय प्राप्त कर लिया था, मात्र अपनी पूजा की शक्ति से भगवान्   को प्राप्त कर सकते हैं; अन्यथा कोई भी केवल अपनी भक्ति से परम भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता ।

इस पर कोई विरोध उठा सकता है --- "हम देखते हैं कि अजामिल ने भी, जिसने किसी गुरु की शरण नहीं ली थी, आसानी से परम भगवान् को प्राप्त कर लिया।" --- तो इसे इस प्रकार समझाया जाना चाहिए: जो लोग गाय और गधे की तरह अपनी इंद्रियों को इन्द्रियतृप्ति की वस्तुओं पर ही चराते रहते हैं और उन्हें सपने में भी पता नहीं है कि भगवान् कौन है, भक्ति क्या है, और गुरु क्या है, वे अजामिल प्रवृत्ति के लोगों की तरह गुरु के बिना भी मात्र अपनी भक्ति के बल पर बच सकते हैं; इसमें नामाभास की प्रक्रिया का बल काम करता है ।

केवल भगवान् हरि ही पूजा के उचित पात्र हैं, भक्तिपूर्ण पूजा ही उन्हें प्राप्त करने का साधन है, इन विषयों पर शिक्षा देने के लिए गुरु ही उचित व्यक्ति हैं, और अतीत में भी वही भक्त जो गुरु द्वारा निर्देशित हुए उन्होंने भगवान् हरि को प्राप्त किया है -- इन सब स्थापित सिद्धान्तों को जानते हुए भी कोई ऐसे निष्कर्ष पर आ सकता है कि "मैं गुरु स्वीकार करने की परेशानी क्यों उठाऊँ ? मैं भी केवल नाम-कीर्तन और दूसरे भक्तिअंगों को पालन करके

भगवान् को प्राप्त कर सकता हुँ ।" ऐसा व्यक्ति इस प्रकार के निष्कर्ष पर आता है, अजामिल जैसे लोगों का उदाहरण देख करके तथा शास्त्रों के इस प्रकार के वचनों को सुनकर के कि जिसमें कहा गया है -- 'कोई दीक्षा की आवश्यकता नहीं है, कोई पुरश्चरण विधि की आवश्यकता नहीं है । मात्र जिह्वा को स्पर्श करने से ही यह कृष्णनामात्मक मन्त्र फलदायक हो जाता है,' (नो दीक्षां न च सत्क्रियां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते....) । लेकिन वास्तव में गुरु की अवज्ञा रूपी घोर अपराध के कारण वह भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता । अपितु जब इस जीवन में या किसी आने वाले जन्म में उसका यह अपराध शमित होगा तब वह किसी गुरु की शरण ले सकता है और तब उसे भगवान् प्राप्त होंगे ।

इसलिये हरिनाम से कोई भी पूर्णता को प्राप्त कर सकता है किन्तु यदि कोई जानते हुए भी गुरु की शरणागति लेकर उनसे प्रशिक्षित होने से खचकता है तो वह अपराध करता है और वह अपने हरिनाम उच्चारण का फल प्राप्त नहीं करेगा ।

और, श्रील प्रभुपाद एक दीक्षा गुरु की आवश्यकता की पुष्टि इस प्रकार करते हैं :

हमको हमेशा याद रखना चाहिए कि जो व्यक्ति आध्यात्मिक गुरु को स्वीकार करने और दीक्षा लेने में अनिच्छुक है, वह भगवान् के पास वापस जाने के अपने प्रयास में निश्चित रूप से भ्रमित होगा। जिसने ठीक से दीक्षा

नहीं ली है, वह खुद को एक महान भक्त के रूप में प्रस्तुत कर सकता है, लेकिन वास्तव में उसे आध्यात्मिक प्राप्ति की दिशा में प्रगति के रास्ते में कई बाधाओं का सामना करना पड़ेगा, जिसके परिणामस्वरूप उसे भौतिक अस्तित्व के अपने कार्यकाल को बिना किसी राहत के जारी रखना होगा। ऐसे असहाय व्यक्ति की तुलना बिना पतवार के जहाज से की जाती है, क्योंकि ऐसा जहाज कभी भी अपने गंतव्य तक नहीं पहुँच सकता। **इसलिए, यह अनिवार्य है कि यदि कोई भगवान् की कृपा को प्राप्त करना चाहता है तो उसे आध्यात्मिक गुरु स्वीकार करना ही होगा ।** आध्यात्मिक गुरु की सेवा अनिवार्य है। यदि किसीको गुरु की साक्षात् सेवा का अवसर प्राप्त नहीं होता तो उसे गुरु की वाणी की स्मरणपूर्वक सेवा करनी चाहिये । आध्यात्मिक गुरु के निर्देशों और स्वयं आध्यात्मिक गुरु के बीच कोई अंतर नहीं है। अतः उनकी अनुपस्थिति में उनके दिशा-निर्देश शिष्य का गौरव होने चाहिए। यदि कोई सोचता है कि वह किसी अन्य से परामर्श करने से ऊपर है, यहाँ तक कि आध्यात्मिक गुरु के भी, तो वह तुरंत भगवान् के चरण कमलों का अपराधी है। ऐसा अपराधी कभी भी भगवान् के पास वापस नहीं जा सकता। यह अनिवार्य है कि एक गम्भीर व्यक्ति शास्त्रीय आदेशों के अनुसार एक प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु को स्वीकार करे। श्रील जीव गोस्वामी सलाह देते हैं कि किसी को आध्यात्मिक गुरु को

> वंशानुगत या प्रथागत सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर स्वीकार नहीं करना चाहिए। आध्यात्मिक समझ में वास्तविक प्रगति हेतु व्यक्ति को चाहिये कि वह एक प्रामाणिक गुरु की खोज करें । (श्री चैतन्य-चरितामृत 1.1.35ता)

इसके अतिरिक्त, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी हमें बताते हैं कि उन्होंने भी एक "मन्त्र -गुरु" की शरण ली थी, जिसका अनुवाद श्रील प्रभुपाद "दीक्षा देने वाले गुरु" के रूप में करते हैं :

> **मन्त्र -गुरु** आर यत शिक्षा-गुरु-गण
>
> तन्हार चरण आगे करिये वन्दन ॥
>
> "मैं अपने **दीक्षा देने वाले गुरु** और तथा शिक्षा देने वाले सभी आध्यात्मिक गुरुओं के चरण कमलों में आदरपूर्वक प्रणाम करता हूँ ।" (श्री चैतन्य-चरितामृत 1.1.35)

यदि कोई भागवत दीक्षा नहीं है तो उन्होंने किस प्रकार की दीक्षा प्राप्त की थी? इस पहेली का समाधान यह है कि गुरु शिष्य को पञ्चरात्रिक दीक्षा के सिद्धान्तों पर पवित्र नाम की दीक्षा देते हैं। इस विषय पर बाद में और अधिक जानकारी दी जाएगी।

वैदिक दीक्षा

विशिष्ट सामाजिक समर्थन प्रणालियों वाले कृष्ण के वैदिक समाज में, पुरुष बच्चों को उनके गुण और वे किस वर्ण की इच्छा रखते हैं, उसके आधार पर उचित उम्र में उपनयन (वैदिक-दीक्षा) मिलता था । आदर्श रूप से, ब्राह्मण लड़कों को गर्भाधान के बाद 8 साल में उपनयन मिलता है,[21] क्षत्रिय लड़कों को 11 साल में, और वैश्य लड़कों को 12 साल की उम्र में ।[22] यदि वे ऊपरी सीमा के भीतर उपनयन प्राप्त करने से चूक जाते हैं (अर्थात, ब्राह्मण के लिए 16, क्षत्रिय के लिए 22 , और वैश्य के लिए 24) तो उन्हें "' व्रात्य ' (धर्मत्यागी) के रूप में जाना जाता है, जो सभी अच्छे लोगों द्वारा तिरस्कृत होते हैं।"[23]

एक स्वस्थ संस्कृति में लड़के को बचपन में ही उपनयन कराया जाता था और फिर वह वेद पाठशाला में भाग लेने के योग्य हो जाता था और वह कम से कम एक वेद याद करके सीखता था । इस प्रकार उपनयन उसे द्विज बनाता है और वेदों का अध्ययन

---

[21] चैतन्य -भागवत 1.8.7 पर श्रील भक्तिसिद्धान्त की टिप्पणियाँ देखें | श्री वृन्दावन दास ठाकुर और भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, श्री चैतन्य भागवत, अनुवाद:- भूमिपति दास (वृंदावन: रास बिहारी लाल एंड संस, 2001). चैतन्य-भागवत के अन्य संदर्भ भी इसी संस्करण से उदधृत किये गये हैं ।

[22] मनु 2.36.

[23] मनु 2.38-39.

करने के लिए योग्य बनाता है। जैसा कि आपस्तंब धर्म सूत्र[24] (1.1.1.9-10) में (एक ब्राह्मण-ग्रन्थ के बल पर) कहा गया है कि सावित्री गायत्री सीखने का उद्देश्य वेद-अध्ययन की दुनिया में प्रवेश करना है:

> *उपनयनं विद्यार्थस्य श्रुतितः संस्कारः*
>
> *"सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यः सावित्र्यानुच्यत" इति हि ब्राह्मणम् ॥*
>
> "दीक्षा या उपनयन एक ऐसे पुरुष का श्रौत (श्रुति उक्त) संस्कार है जो वेदों के पवित्र ज्ञान को प्राप्त करने का इच्छुक है और जो इसका सहीं उपयोग कर सकता है । एक ब्राह्मण ग्रन्थ घोषित करता है कि सावित्री या गायत्री तीनों वेदो को सीखने के लिये दी जाती है ।"

यद्यपि ऐसा व्यक्ति एक द्विज है, फिर भी उसे वैष्णव मंदिर में अर्चाविग्रह की पूजा करने की अनुमति नहीं है। अर्चाविग्रह की पूजा करने के लिए, उसे वैष्णव बनना होगा। बाद में यदि वह इस प्रकार वैष्णव बनना चाहता है तो वह पञ्च-संस्कार प्राप्त करने के लिए किसी गुरु के पास जा सकता है। पञ्चसंस्कार अर्थात् एक व्यक्ति को वैष्णव करने के लिए पञ्चरात्रिक दीक्षा - - यह" त्रिज" है, तीसरा जन्म -- इस पर अधिक विवरण नीचे दिया गया है।

---

[24] यह भी देखें, "वैदिक संग्रह में आपस्तंब धर्म सूत्र की स्थिति ।"

https://archive.org/details/position-of-apastamba/mode/1up

पाञ्चरात्रिक दीक्षा

पञ्चरात्रिक दीक्षा पर चर्चा करने से पहले पञ्चरात्र पर कुछ टिप्पणियाँ आवश्यक हैं। गौड़ीय सिद्धान्त और अभ्यास के मूल सिद्धान्त मुख्य रूप से पञ्चरात्र और श्रीमद् -भागवतम् इन दो अविभाज्य स्रोतों से प्राप्त होते हैं । दोनों के विषय ओवरलैप हैं और उनमें पूर्ण सामंजस्य है। भागवतम् भक्ति के सिद्धान्तों पर अधिक जोर देता है और उनकी व्याख्या करता है , जबकि पञ्चरात्र भागवतम् के निष्कर्षों और सिद्धान्तों के बारे में विस्तृत विवरण प्रदान करता है , जिसमें भक्ति को निष्पादित करने (दीक्षा के लिए प्रक्रियाएँ , आदि) से संबंधित विषयों का विवरण दिया गया है, साथ ही भक्ति के आवश्यक सिद्धान्त और भक्ति की महिमा भी बताई गई है। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध श्लोक -- सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तम् -- और -- आराधितो यदि हरिस तपसा ततः किं --- ये पञ्चरात्र से हैं । पञ्चरात्र शास्त्र में वर्णन मिलता है चतुर-व्यूहों का, विभिन्न रूपों में हरि की विशेषताओं इत्यादि का, नाम-कीर्तन और इसके अलग-अलग प्रकारों का, कई प्रकार के सहस्र-नामों और उनकी महिमाओं का पञ्चरात्र निर्देश देते हैं कि मंदिरों का निर्माण कैसे किया जाना चाहिए और भगवान् का सम्मान करने वाले त्योहारों को कैसे मनाया जाना चाहिए, और अन्य भक्ति सम्बन्धी विषय भी है।

भागवत सिखाता है कि क्या करना है और क्यों करना है; पञ्चरात्र व्यावहारिक विवरण के साथ यह बताता है कि इसे कैसे करना है। उदाहरण के लिए, भागवतम् तीन गुणों में की जाने

वाली भक्ति के बारे में और उससे ऊपर तीनों गुणों से परे (निर्गुण) भक्ति का वर्णन करता है; और पञ्चरात्र शास्त्र इन विभागों के अनुसार शरीर, मन और वचनों द्वारा की जाने वाली भक्ति की गतिविधियों को निर्दिष्ट करता है । एक अन्य उदाहरण: भागवतम् पवित्र नामों का उच्चारण करने का निर्देश देता है और इसके दार्शनिक कारण बताता है; पञ्चरात्र 108 मनकों वाली तुलसी माला पर जप करने का निर्देश देता है, जो बड़े सिरे से शुरू होता है, इत्यादि। लेकिन पञ्चरात्र शास्त्र को केवल "कैसे करें" इस प्रकार के व्यावहारिक विवरणों को बताने वाले मैनुअल के रूप में सोचना निराशाजनक होगा । वे इससे कहीं अधिक हैं।

उदाहरण के लिए, श्री ब्रह्म-संहिता को ले जो गौड़ीय वैष्णवता में सबसे प्रतिष्ठित और आवश्यक ग्रंथों में से एक है। यह **पञ्चरात्रिक**[25] शास्त्र भगवान् चैतन्य द्वारा अपने भक्तों के लाभ के लिए व्यक्तिगत रूप से सुदूर दक्षिण भारत से बंगाल और ओडिशा में लाया गया था।[26]

---

[25] भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर, श्री ब्रह्म संहिता श्रील जीव गोस्वामी की टिप्पणी के साथ (मद्रास: श्री गौड़ीय मठ, 1973), vii. https://archive.org/details/shri-brahma-samhita-trans-by-bhakthi-siddhanta-sarasvati-gosvami-thakur-ocr/page/n6/mode/1up

[26] अधिक जानकारी के लिए श्री चैतन्य-चरितामृत 2.1 देखें । 120; 2.9.237-241; 2.9.309,323; 2.11.143

आदि-केशव के मंदिर में, श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यधिक उन्नत भक्तों के बीच आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा की। वहाँ रहते हुए, उन्हें ब्रह्म संहिता का एक अध्याय मिला । श्री चैतन्य महाप्रभु इस एक अध्याय को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न थे और भावात्मक विकार के लक्षण -- कंपन, अश्रु, स्वेद, समाधि और उल्लास -- उनके शरीर में प्रकट हुए थे।

जहाँ तक अंतिम आध्यात्मिक निष्कर्ष का सवाल है, ब्रह्म-संहिता के बराबर कोई शास्त्र नहीं है । वास्तव में, वह ग्रंथ भगवान् गोविंद की महिमा का सर्वोच्च रहस्योद्घाटन है, क्योंकि यह उनके बारे में सर्वोच्च ज्ञान को प्रकट करता है। चूँकि सभी निष्कर्ष संक्षेप में ब्रह्म-संहिता में प्रस्तुत किए गए हैं, यह सभी वैष्णवों शास्त्रों के बीच आवश्यक शास्त्र है । (श्री चैतन्य-चरितामृत 2.9.237-240)

इन दो श्लोकों के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते है:

ब्रह्म -संहिता एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने आदि-केशव मंदिर से पाँचवाँ अध्याय प्राप्त किया। उस पाँचवें अध्याय में, अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्व (एक साथ एकता और भिन्नता) का दार्शनिक निष्कर्ष प्रस्तुत हुआ है । इस अध्याय में इन विषयों का भी वर्णन हुआ है -- भक्ति सेवा के तरीके; अठारह अक्षर वाला वैदिक मन्त्र; आत्मा, परमात्मा और सकाम कर्म पर प्रवचन; काम-गायत्री, काम-बीज और मूल महा-विष्णु की

> व्याख्या; और आध्यात्मिक जगत् का विस्तृत विवरण भी प्रस्तुत किया गया है, विशेष रूप से गोलोक वृन्दावन का। ब्रह्म -संहिता में देवता गणेश; गर्भोदकशायी विष्णु; गायत्री मंत्र की उत्पत्ति; गोविंद का रूप और उनकी दिव्य स्थिति और निवास; जीव; सर्वोच्च लक्ष्य; देवी दुर्गा; तपस्या का अर्थ; पाँच भौतिक तत्त्व; ईश्वर का प्रेम, निर्विशेष ब्रह्म; भगवान् ब्रह्मा की दीक्षा, और पारलौकिक प्रेम की दृष्टि जो व्यक्ति को भगवान् को देखने में सक्षम बनाती है। भक्ति सेवा के सोपानों को भी समझाया गया है। मन; योग-निद्रा; भाग्य की देवी; भाव के स्तर की भक्ति सेवा; भगवान् रामचन्द्र से शुरू होने करके सभी अवतार, अर्चाविग्रह; बद्ध आत्मा और उसके कर्तव्य; भगवान् विष्णु के बारे में सत्य; प्रार्थनाएँ ; वैदिक स्तोत्र; भगवान् शिव; वैदिक साहित्य; निर्विशेषवाद और सविशेषवाद, सदाचार, इत्यादि कई अन्य विषयों पर भी चर्चा हुई है। सूर्य और भगवान् के विश्वरूप का भी वर्णन है। इन सभी विषयों को ब्रह्म-संहिता में संक्षेप में निर्णायक रूप से समझाया गया है । (श्री चैतन्य-चरितामृत 2.9.239-240ता)

यह पञ्चरात्र की दार्शनिक गहराई को इंगित करता है और इसे स्थापित करता है कि यह हमारे संप्रदाय के लिए महत्वपूर्ण क्यों है ।[27]

---

[27] इसके बारे में अधिक जानकारी के लिए पंचरात्र का परिचय देखें

पञ्चरात्रिक दीक्षा (पंच-संस्कार[28]) के विषय पर लौटते हुए : इसमें शामिल है --- ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक - प्रभु के पदचिह्न), दास्य नाम (हरि के नित्य दास के रूप में नामित होना), ताप (उन स्वामी[29] के चिह्नों से चिह्नित होना), मन्त्र (विभिन्न पञ्चरात्रिक मन्त्र), और याग (अर्चाविग्रह का पूजन) ।

अपने गुरु से प्राप्त कुछ मंत्रों का उपयोग करके, शिष्य शालग्राम शिला या श्रीमूर्ति, कृष्ण के अर्चाविग्रह की पूजा शुरू करता है। इसे "याग" के नाम से जाना जाता है ।

पाँच संस्कार प्राप्त करके एक श्रद्धालू व्यक्ति भजन-क्रिया या भगवान् की व्यक्तिगत पूजा में प्रवेश करता है, जो अंततः उसे श्रीहरि के प्रति शुद्ध प्रेम की ओर ले जाता है। अब "त्रिज" (तीसरी बार जन्मा) जिसने पञ्च-संस्कार प्राप्त कर लिया है, ऐसा व्यक्ति घर में या तो मंदिर में भी पूजा करने के योग्य है जो पूजा

---

[28] पंच-संस्कार के विस्तृत विवरण के लिए देखें : एम. लक्ष्मीथाथाचर और वी. वरदाचारी, ईश्वरसंहिता खंड 4 (दिल्ली: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, और मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, 2009), 1335

ईश्वरसंहिता मेलुकोटे में, जो श्री वैष्णववाद के सबसे महत्वपूर्ण केंद्रों में से एक है और जो श्रीपाद रामानुज आचार्य द्वारा व्यक्तिगत रूप से पुनः स्थापित किया गया है, वहाँ पर मुख्य पंचरात्रिक ग्रन्थ के रूप में उपयोग होती है ।

[29] श्री और माधव संप्रदाय में, शंख और चक्र की तप्तधातु मुद्राओं से शरीर को अंकित करके ताप दिया जाता है, लेकिन श्री चैतन्यदेव ने (पद्म पुराण के आधार पर) निर्देश दिया है कि हम इसके बजाय चंदन के लेप आदि का उपयोग करके शरीर को हरि-नाम से चिह्नित करें।

पञ्चरात्र शास्त्रों के मानकों के अनुसार और उसकी अपनी स्थिति एवं उसके सम्प्रदाय के अनुरूप की जाती है ।

कैसे एक योग्य व्यक्ति त्रिज बन जाता है

एक योग्य व्यक्ति त्रिज कैसे बनता है इसका खुलासा श्रीमद्भागवत में किया गया है :

किं जन्माभिस्त्रिभिर्वेहा

शुक्र-सावित्र-याज्ञिकैः ।

कर्मभिर्वा त्रयी-प्रोक्तैः

पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥

"एक सभ्य मनुष्य के **तीन प्रकार के जन्म** होते हैं । पहला जन्म शुद्ध पिता और माता द्वारा होता है और इस जन्म को वीर्य द्वारा जन्म कहा जाता है। अगला जन्म तब होता है जब कोई आध्यात्मिक गुरु से दीक्षा लेता है और इस जन्म को "सावित्र" कहा जाता है । **तीसरा जन्म,** जिसे याज्ञिक कहा जाता है, तब होता है जब किसी को भगवान् विष्णु की पूजा करने का अवसर दिया जाता है। ऐसे जन्म प्राप्त करने के अवसरों के बावजूद भी, भले ही किसी को एक देवता का जीवन काल मिल भी क्यों न दिया जाए, यदि कोई वास्तव में भगवान् की सेवा में संलग्न नहीं होता है, तो सब कुछ बेकार है। इसी प्रकार, किसी की गतिविधियाँ

> सांसारिक या आध्यात्मिक हो सकती हैं, लेकिन यदि वे भगवान् को संतुष्ट करने के लिए नहीं हैं तो वे बेकार हैं।" (श्रीमद्भागवत 4.31.10)

पहला जन्म माता-पिता से होता है। दूसरा जन्म, सावित्र,[30] वैदिक-दीक्षा है। और जैसा कि इस श्लोक के तात्पर्य में बताया गया है, याज्ञिक नामक तीसरा जन्म पञ्चरात्रिक-विधि के माध्यम से होता है । यह एक और उदाहरण है जहाँ भागवतम् किसी चीज़ के सिद्धान्त का उल्लेख करता है (इस मामले में तीसरा जन्म) लेकिन यह क्रियन्वित कैसे होता है इसका विवरण पञ्चरात्र में है ।

म्लेच्छों, यवनों, पंचमों, या व्रात्यों के मामले में स्थिति अलग है। वे आमतौर पर, लेकिन हमेशा नहीं, उपनयन का समय बीत जाने के काफी समय बाद वैष्णव धर्म में रुचि लेने लगते हैं। इसलिए उन्हें पहले पञ्चरात्रिक दीक्षा (याज्ञिक) मिलेगी और फिर योग्य होने पर उपनयन (वैदिक-दीक्षा) मिलेगा ।

"याग"[31] और "यज्ञ"[32] इन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है और ये मूल 'यज्' धातु से बने हैं जिसका अर्थ है पूजा करना, होम करना, या प्रदान करना। यह बाद में एक महत्वपूर्ण विचार

---

[30] मन्त्र में निहित शब्दों के आधार पर यह ब्रह्म गायत्री का एक और नाम है

[31] https://tinyurl.com/5n859p4h

[32] https://tinyurl.com/4twedh48

होगा। सूक्ष्म अंतर यह है कि याग अर्चाविग्रह की पूजा से संबंधित है।[33]

इसके अलावा, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि (पञ्च - संस्कार में) मन्त्र संस्कार एक ही बार की घटना नहीं है क्योंकि अलग-अलग समय पर अलग-अलग उद्देश्यों के लिए अलग-अलग मन्त्र देने की आवश्यकता हो सकती है। उदाहरण के लिए, किसी विशेष मन्त्र जैसे नृसिंह मंत्र[34] में दीक्षा, या संन्यास के समय दिये गये संन्यास मन्त्र की दीक्षा भी मन्त्र संस्कार का हिस्सा होगी । उसी प्रकार पूजा करने के लिए किसी भी देवता-विशिष्ट मन्त्र की आवश्यकता होती है जो पहले नहीं दिए गए थे, ये सब मन्त्र संस्कार से दिये जाते है। उदाहरण के लिए, पञ्चरात्रिक आगम मंदिरों में अर्चना के विभिन्न स्तर होते हैं, जिनमें से प्रत्येक में विशिष्ट मंत्रों की आवश्यकता होती है -- उच्चतम अर्चक दीक्षा (चक्रब्ज मंडल दीक्षा) है जो प्रधान पुजारि को दी जाती है। इसलिए जब मन्त्र संस्कार की बात आती है तो शिष्य की आवश्यकता के अनुसार कुछ फेरबदल का अवकाश होता है।

---

33 *नारद-पंचरात्र (भारद्वाज-संहिता) परिशिष्ट* 2.48-50

https://archive.org/details/VDNAP/page/n129/mode/2up

34 लक्ष्मीथाथाचार और वरदाचारी, ईश्वरसंहिता खंड 4 , 1287.

पवित्र नाम का जप और कीर्तन -- पञ्चरात्रिक-दीक्षा के एक भाग के रूप में

हमने पहले ऊपर बताया था कि हरे कृष्ण महा-मन्त्र की दीक्षा पञ्चरात्रिक दीक्षा के माध्यम से होती है । अब हम इस दावे को प्रमाणित करने के लिए प्रमाण प्रदान करेंगे। श्रीमद्भागवत में हमें निम्नलिखित श्लोक मिलते हैं :

इति द्वापर उर्वीश

स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ।

नाना-तंत्र-विधानेन

कलावपि तथा श्रृणु ॥

"हे राजन, इस प्रकार द्वापर युग में लोगों ने जगत् के ईश्वर का महिमा गान किया। कलियुग में भी लोग शास्त्रों के विभिन्न नियमों का पालन करके भगवान् की पूजा करते हैं। अब कृपया इस विषय में मुझसे सुनें। (श्रीमद्भागवत 11.5.31)

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार "नाना-**तंत्र**-विधानेन" शब्द कलियुग में **पञ्चरात्र या सात्वत पञ्चरात्र** शास्त्रों नामक वैष्णव शास्त्रों के महत्व को इंगित करता है। ... **भगवान् के पवित्र नामों का जप, कीर्तन,** और उनके अर्चाविग्रह रूप की पूजा जैसी भक्ति प्रक्रियाएँ ऐसे पञ्चरात्र नामक वैष्णव

शास्त्रों में विस्तृत रूप से वर्णित हुई हैं । ऐसे **तान्त्रिक** ग्रन्थों का वर्णन इस श्लोक में किया गया है और बताया गया है कि कलियुग में नारदादि आचार्यों द्वारा सिखाई गई भक्ति की यही सब प्रक्रियाएँ भगवान् की पूजा करने के लिए एकमात्र व्यावहारिक उपाय है । यह बात अगले श्लोक में ज्यादा स्पष्ट हो जायेगी ।

कृष्णवर्णम् त्विषाकृष्णम्

संगोपांगास्त्र-पार्षदम् ।

यज्ञैः संकीर्तन-प्रायैर्

यजन्ति हि सुमेधशः ॥

"कलियुग में, बुद्धिमान व्यक्ति भगवान् के एक ऐसे अवतार की पूजा करने के लिए सामूहिक कीर्तन करते हैं जो अवतार लगातार कृष्ण के नाम गाते रहते हैं। यद्यपि उनका रंग काला नहीं है, वे स्वयं कृष्ण हैं। वे अपने पार्षदों, सेवकों, अस्त्रों, और निजी परिकरों द्वारा घिरे रहते हैं ।" (श्रीमद्भागवतम् 11.5.32)

इस श्लोक को सीधे पढ़ने से पता चलता है कि श्लोक 31 में करभजन योगेन्द्र राजा निमि से कहते हैं कि कलियुग में लोग विभिन्न तंत्रों[35] (पंचरात्र आगमों) के माध्यम से भगवान् की पूजा करते हैं। फिर 32वें श्लोक में पूजा की विधि बताई गई है।

---

[35] इस तन्त्र शब्द को तामसिक शैव , शाक्त और बौद्ध तांत्रिक परंपराओं से न जोड़े ।

उनका कहना है कि बुद्धिमान लोग कृष्ण (या गौरांग) की पूजा "यज्ञैः संकीर्तन-प्रायैर्" के माध्यम से करेंग, अर्थात, अर्चना प्रक्रिया के माध्यम से (यज्ञैः) जिसमें संकीर्तन मुख्य भाग (संकीर्तन-प्रायैर्) के रूप में किया जाता है। सभी आचार्य अपनी व्याख्याओं में इस बिंदु पर एकमत हैं। दूसरे शब्दों में, अर्चन संकीर्तन के साथ किया जाना चाहिए, क्योंकि यह संकीर्तन ही है जो अर्चन को सफल बनाता है। इसीलिए हम देखते हैं कि इस्कॉन और गौड़ीय मठ में आरतियों (और यज्ञ आदि के लिए होम) के साथ-साथ महा-मंत्र का संकीर्तन भी चलता है, जो वास्तव में आरती आदि को अपना प्रभाव दिखाकर उचित परिणाम प्रदान करने में सक्षम बनाने वाली मुख्य प्रक्रिया है।

कुछ लोग सोचते हैं कि पञ्चरात्रिक दीक्षा केवल अर्चाविग्रह की पूजा के लिए है और यह हरे कृष्ण महा-मन्त्र के लिए आवश्यक नहीं है । इसके बारे में कोई भी संदेह श्री चैतन्य-भागवत पर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी से दूर हो जाता है, जिसमें भगवान् चैतन्य तपन मिश्रा को निर्देश देते हैं :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

एइ श्लोक नाम बलि' लय महा-मंत्र

शोला-नाम बत्रिश-अक्षर एई तंत्र

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ इस श्लोक को महामन्त्र कहा जाता है । इसमें बत्तीस

अक्षरों से बने भगवान के सोलह पवित्र नाम शामिल हैं। (श्री चैतन्य-भागवत 1.14.145-146)

तात्पर्य:

सम्बोधन के रूप में बत्तीस अक्षरों से बने ये सोलह पवित्र नाम महामन्त्र कहलाते हैं । **पञ्चरात्र (तंत्र) की प्रक्रिया के अनुसार इस महा-मन्त्र का उच्चरण जप और ऊँचे स्वर में कीर्तन दोनों में किया जाना चाहिए ।** जो व्यक्ति इस महामन्त्र का ऊँचे स्वर से कीर्तन करता है, उसके हृदय में उस ऊँचे कीर्तन के प्रभाव से भगवान् के प्रेम का बीज अंकुरित होता है; और पवित्र नामों की विकसित हो रही कृपा से वह व्यक्ति शीघ्र ही जीवन के लक्ष्य के विज्ञान और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया में विशेषज्ञ बन जाता है। (श्री चैतन्य-भागवत 1.14.146ता)

इसलिए निष्कर्ष यह है कि महा-मन्त्र का उच्चारण या कीर्तन पञ्चरात्र (तंत्र) की प्रक्रिया के अनुसार किया जाना चाहिए ।

संकीर्तन-यज्ञ दीक्षा

हमने पहले दीक्षा का उल्लेख किया था जिसमें यजमान को यज्ञ करने के लिए दीक्षित किया जाता है। श्रीमद्-भागवतम् (11.5.32) हमें बताता है कि कलियुग में निर्धारित यज्ञ है संकीर्तन यज्ञ। कलियुग के लिए, पवित्र नामों के संकीर्तन में दीक्षा की तुलना यज्ञ-दीक्षा से की जा सकती है। नाम-आचार्य के रूप में पहचाने जाने वाले हरिदास ठाकुर इस दावे का समर्थन करते हैं :[36]

> *"संख्या-नाम-संकीर्तन -- एई 'महा-यज्ञ ' मन्ये*
>
> *ताहाते **दीक्षित** अमि हई प्रति-दिने ।*
>
> “प्रतिदिन एक निश्चित संख्या में पवित्र नाम का जप करके एक महान यज्ञ करने की प्रतिज्ञा में मुझे दीक्षित किया गया है ।" (श्री चैतन्य-चरितामृत 3.3.240)

---

[36] उल्लेखनीय रूप से कुछ लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि चूंकि यहाँ दीक्षा गुरु का नाम नहीं दिया गया है या हरिदास ठाकुर के लिए दीक्षा समारोह का वर्णन नहीं किया गया है, इसलिए किसी को दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है ! यह "आर्गुमेंटम एक्स साइलेंटियो" (मौन से तर्क) का एक रूप है । यह एक मजबूत तर्क नहीं है क्योंकि "सबूत की अनुपस्थिति अनुपस्थिति का सबूत नहीं होती ।" हरिदास ठाकुर स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उन्हें दीक्षा दी गई थी । फ़िर सिर्फ इसलिए कि हम (इस समय) नहीं जानते कि उनके गुरु कौन थे, इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें गुरु द्वारा दीक्षा नहीं मिलि थी और कि दूसरों के लिए भी किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है।

चैतन्य-मंगल ने संकीर्तन-यज्ञ को एक वैदिक यज्ञ के रूप में वर्णित किया है, जहाँ जीवों के कान यज्ञ द्वार हैं, जीभ -- स्त्रुक्-स्त्रुव है, और भगवान् कृष्ण की महिमा -- यज्ञीय घी है।

संकीर्तन-यज्ञ और वैदिक यज्ञ के बीच इस प्रकार के सहसंबंधों की गहन खोज के लिए, कृपया चैतन्य-मंगल 2.21.81-90 को देखें।[37]

गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षा

जबकि हमारे संप्रदाय[38] में भागवत, पञ्चरात्रिक और वैदिक तीनों के तत्व शामिल हैं, हमारी दीक्षा प्रणालि केवल पञ्चरात्र और वैदिक तत्त्वों पर आधारित है ।

पञ्चरात्रिक दीक्षा, पञ्च-संस्कार है जिसका वर्णन हमने पहले कर दिया है। इन पाँचों में से प्रत्येक संस्कार अलग-अलग, एक साथ या गुरु के निर्णय के अनुसार के भागों में प्रदान किया जा सकता है।[39]

इस्कॉन की पहली दीक्षा में पाँच में से पहले तीन संस्कार औपचारिक रूप से दिए जाते हैं (ऊर्ध्वपुण्ड्र, ताप, और दास्य

[37] https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/chaitanya-mangala/d/doc1112748.html

[38] विशेष रूप से श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुयायी ।

[39] नारद-पंचरात्र (भारद्वाज-संहिता) परिशिष्ट 2.54-56 https://archive.org/details/VDNAP/page/n131/mode/2up

नाम) । और दूसरी दीक्षा में अन्य दो (याग के साथ मन्त्र - संस्कार) प्रदान किये जाते हैं।[40] दूसरी दीक्षा में दिए गए पञ्चरात्रिक मन्त्र गुरु बीज, गुरु गायत्री, काम बीज, आदि हैं जो अर्चाविग्रह पूजन और ध्यान करने के लिए आवश्यक हैं ।[41]

पञ्च-संस्कार में सभी पाँच आवश्यक संस्कार के पूरा होने के साथ ही व्यक्ति अब पूरी तरह से दीक्षित वैष्णव हो गया है । इसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है; यह पर्याप्त है। यह प्रजाति,[42] वर्ण, सामाजिक वर्ग, या लिंग का विचार किए बिना सभी के लिए खुला है ।[43]

यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ब्रह्म-गायत्री (SAC के पेपर का विषय) प्राप्त करना किसी को वैष्णव नहीं बनाता है । न तो ब्रह्मगायत्री पवित्र नाम का जप करने के लिए आवश्यक है, न ही यह अर्चाविग्रह की पूजा करने के लिये आवश्यक है ।

---

[40] ऐसा प्रतीत होता है कि गौड़ीय मठ में दास्य नाम को कभी-कभी दूसरी दीक्षा में शामिल किया जाता था, और कभी-कभी पहली में। जैसा कि कहा गया है, यह गुरु का विशेषाधिकार है कि व्यक्तिगत संस्कार किस क्रम में, कितने और कब दिए जाएँ ।

[41] उदाहरण के लिए, भगवान ब्रह्मा ने ब्रह्मांड का निर्माण करने के लिए काम बीज में ध्यान लगाया ।

[42] उदाहरण के लिए, गरुड़ और हनुमान मनुष्य नहीं हैं ।

[43] नारद-पंचरात्र (भारद्वाज-संहिता) 1.14-15

https://archive.org/details/VDNAP/page/n107/mode/2up

इसके बाद पुरुषों के लिए अतिरिक्त के रूप में, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर उन्हें उपनयन देते थे -- पवित्र उपवीत और ब्रह्म-गायत्री (वैदिक तत्व) के साथ। पहले वे व्रात्य थे और उपनयन की समय सीमा के भीतर नहीं थे, लेकिन पञ्च -संस्कार के माध्यम से द्विज बनने के बाद अब वे नए सिरे से पैदा हुए हैं और यदि उनमें अपेक्षित चरित्र और गुण हैं तो वे उपनयन के लिए पात्र हैं।

जैसा कि मनु बताते हैं, उपनयन केवल पुरुषों के लिए है। महिलाओं के लिए विवाह संस्कार उपनयन के समकक्ष है।[44]

वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम्

संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।

पतिसेवा गुरौ वासो

गृहार्थोऽग्निपरीक्रिया ॥

"महिलाओं के लिए विवाह संस्कार को उनका 'वैदिक संस्कार,' पति की सेवा को 'गुरु के साथ निवास,' और घरेलू कर्तव्यों को 'पवित्र

[44] इस्कॉन के कुछ भक्तों सहित, समकालीन नास्तिक विद्वानों के बीच एक गलत धारणा प्रचलित है कि प्राचीन वैदिक संस्कृति में, महिलाओं को उपनयन संस्कार (पवित्र उपवीत और ब्रह्म-गायत्री) प्राप्त होते थे । इस दावे की इस लिंक पर विस्तार से जांच की गई है: https://guru-sadhu-sastra.blogspot.com/p/women-upanayana.html

> अग्नि की देखभाल,' इस प्रकार करके विधाता ने सौंपा है।" (मनु-संहिता 2.67)

इस पृष्ठभूमि के साथ, अब हम SAC के पहले और मुख्य तर्क पर विचार कर सकते हैं जो उनके उपर्युक्त पेपर के पृष्ठ 16 पर पाया गया है।

SAC का पहला और मुख्य तर्क

> भाग एक का 'हर्मेन्यूटिकल' अवलोकन:
>
> **1. विषय---** ब्रह्म-गायत्री मन्त्र दीक्षित व्यक्ति को उच्च योग्यता प्रदान करता है
>
> **2. संशय---** क्या ब्रह्म-गायत्री एक वैष्णव मन्त्र है, जिसका जप भक्ति का अंग है, या यह वर्ण धर्म का हिस्सा है ?
>
> **3. पूर्वपक्ष---** यद्यपि कुछ साधक भक्त ब्रह्म-गायत्री का जप कर सकते हैं, यह वर्णाश्रम का ही एक हिस्सा है और इसे वर्णाश्रम के अभ्यास के रूप में लागू किया जाना चाहिए
>
> **4. उत्तर-पक्ष---** ब्रह्म-गायत्री को समझने और इस पर ध्यान करने के ऐसे तरिके हैं कि जो विष्णु या कृष्ण की पूजा से संबंधित हैं
>
> **5. निर्णय---** ब्रह्म-गायत्री का जप केवल भक्ति के अभ्यास के रूप में भी किया जा सकता है।
>
> **6. सिद्धान्त ---** ब्रह्म-गायत्री का जप वर्णाश्रम के अंग के रूप में करना भी संभव है और केवल भक्ति के अंग के रूप में करना भी संभव है; और दोनों के मिश्रण के रूप में

भी संभव है । श्रील प्रभुपाद ने इसे अपने शिष्यों को विशेष रूप से भक्ति के अंग के रूप में दिया है ।

ऊपर के छः बिन्दुओं को पढ़कर हम देख सकते हैं कि SAC ने मूल प्रश्न को नजरअंदाज कर दिया है । मूल प्रश्न यह है कि "श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने उपनयन की शुरुआत क्यों की ?" आप उपनयन से वैष्णव नहीं बन जाते । पञ्च - संस्कार उसके लिए आवश्यकता है । कई द्विजों (स्मार्त, शैव, शाक्त, गाणपत्य, आदि) का उपनयन हुआ है , लेकिन वे वैष्णव नहीं हैं।

ऐतिहासिक तथ्य के अनुसार, उस समय श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जाति ब्राह्मणों के साथ युद्ध में थे और यह दिखाना चाहते थे कि चरित्र से वैष्णव भी ब्राह्मण थे। **यह बहुत ही महत्वपूर्ण बिंदु है** क्योंकि पूर्वपक्ष (SAC) इसे नजरअंदाज करके अन्य बातों पर ध्यान बँटाता है जैसे कि यह जोर देता है कि ब्रह्म गायत्री भक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। फिर इस स्थिति से SAC अप्रत्यक्ष और घुमावदार मार्गों से हमें ले जाते हुए अपने जोर-जबरदस्ती वाले निष्कर्ष पर लाकर रख देता है ।

गौर-किशोर दास बाबाजी, वंशीदास बाबाजी, और जगन्नाथ दास बाबाजी जैसे पिछले गौड़ीय आचार्य किसी भी उद्देश्य के लिए ब्रह्म-गायत्री का जप नहीं किये थे, भक्ति के लिए करने की तो बात ही छोड़ो।

ब्रह्म-गायत्री जैसा कि हमने ऊपर दिखाया है, वैदिक दीक्षा का हिस्सा है क्योंकि यह योग्य पुरुष छात्र को वैदिक अध्ययन की

दुनिया में प्रवेश करने का अधिकार देता है, जो महिलाओं और शूद्रों के लिये वर्जित है। इसलिए SAC के पूरे दृष्टिकोण एवं कार्यप्रणालि में कुछ बहुत गड़बड़ है। SAC ने श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के मनोऽभीष्टम् को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है।

क्यों श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने उस समय एक अपरंपरागत तरीके से उपनयन की शुरुआत की?

इस सबसे स्पष्ट और महत्वपूर्ण सवाल को SAC पूछता नहीं किन्तु नजरअंदाज कर देता है -- "श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने उस समय अपरंपरागत तरीके से उपनयन की शुरुआत क्यों की?" यदि हम इसका उत्तर जान लें तो सब कुछ ठीक समझ में आ जाता है। यदि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने भक्ति के अभ्यास के लिए ब्रह्म-गायत्री की शुरुआत की तो SAC सही है, लेकिन यदि उन्होंने इसे किसी अलग कारण से शुरु किया तो SAC का पूरा तर्क ध्वस्त हो जायेगा। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर चैतन्य-भागवत पर अपनी

व्याख्या में उपनयन -- पवित्र उपवीत समारोह -- का कारण इस प्रकार बताते हैं :

> **यज्ञोपवीत संस्कार का उद्देश्य व्यक्ति को वेदों का अध्ययन करने की योग्यता प्रदान करना है,** क्योंकि ब्रह्म-सूत्र में कहा गया है कि शूद्र , या बिना पवित्र उपवीत वाले लोग, वेदान्त सुनने के पात्र नहीं हैं । पञ्चरात्रिक मंत्रों को स्वीकार करने और श्री नारद पञ्चरात्र के अनुसार उचित रूप से दीक्षित होने के बाद व्यक्ति को दस संस्कारों[45] को करना चाहिए और उसके बाद मन्त्रों का अर्थ सुनना चाहिए। (श्री चैतन्य-भागवत 1.8.7ता).

यह वही कारण है जो आपस्तंब ने दिया है जिसे हमने पहले उद्धृत किया था। और हम ध्यान दें कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं, " पञ्चरात्रिक मंत्रों को स्वीकार करने के बाद ..." व्यक्ति को वैदिक संस्कार का पालन करना चाहिए । और यही वस्तु उन्होंने पञ्च-संस्कार देने के बाद उपनयन देकर के स्थापित की ।[46]

---

[45] "संस्कार" शब्द यहाँ पर मानक वैदिक संस्कारों जैसे गर्भाधान, उपनयन, विवाह, इत्यादि को लक्षित करता है ।

[46] श्रीपाद भक्ति विकास स्वामी के अनुसार श्रील भक्तिसिद्धांत ने गौड़ीय मठ में जो प्रोटोकॉल स्थापित किया था, वह यह था कि उपनयन (ब्रह्म -गायत्री मंत्र और पवित्र उपवीत) ६ पंचरात्रिका मंत्र दिए जाने के बाद उसी दिन एक अलग समारोह में दिया जाता था ।

और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के जातीय ब्राह्मणों के साथ युद्ध के संबंध में --- श्रील प्रभुपाद ने इसे शुरू करने का अपना अन्य कारण बताया है:

> श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने वैष्णव शिष्यों के लिए यज्ञोपवीत संस्कार की शुरुआत की इस विचार के साथ कि लोगों को यह समझना चाहिए कि जब कोई वैष्णव बन जाता है तो उसने पहले से ही एक ब्राह्मण की योग्यता हासिल कर ली है ।
>
> इसलिए अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ में, जो दो बार दीक्षित होकर ब्राह्मण बनें है उनको अपने मनमें अपनी बहुत ही बड़ी जिम्मेदारी समझनी होगी कि उनको सत्यवादी, मन और इन्द्रियों पर निग्रह, सहिष्णु, इत्यादि का पालन करना होगा । (श्रीमद्भागवत 10.7.13-15 तात्पर्य)

और यहाँ पर श्रील प्रभुपाद पुष्टि करते हैं कि वे उसी कारण से पवित्र उपवीत प्रदान कर रहे हैं :

> प्रभुपाद: हाँ। हम यूरोप और अमेरिका में इन्हें ब्राह्मण कहकर क्यों स्वीकार कर रहे हैं? वे ब्राह्मण परिवार में पैदा नहीं हुए हैं। **लेकिन हम उन्हें जनेऊ (उपवीत) क्यों दे रहे हैं? केवल गुण और कार्य के लिए।** यह शास्त्र में कहा गया है । नारद मुनि कहते हैं कि गुण और लक्षण ही यह निर्णय करने का वास्तविक मंच है कि कौन ब्राह्मण है , कौन शूद्र है । नारद ने कहा, और श्रीधर स्वामी ने उन पर

> टिप्पणी की है कि जन्म का इतना महत्त्व नहीं है; **गुण और कर्म को देखा जाना चाहिये ।** (8 दिसम्बर 1973, लॉस एंजिल्स)

यह SAC के इस दावे का खंडन करता है कि, **"श्रील प्रभुपाद ने इसे मुख्य रूप से भक्ति के एक भाग के रूप में अपने शिष्यों को दिया था ।"**

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की ओर लौटते हुए --- उन्होंने उपनयन की शिक्षा दी क्योंकि यह वैदिक अध्ययन का प्रवेश द्वार है और यह जाति ब्राह्मणों के खिलाफ उनके युद्ध का हिस्सा था।

निष्कर्ष यह है कि SAC की स्थिति टूट कर के बचावहीन अवस्था में आ गई है; कारण है उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) प्रदान करने के पीछे के कारणों का उन्होंने तोड़-मरोड़ करके गलत प्रतिनिधित्व किया है । SAC के लेखक या तो घोर अज्ञानी होने, या गलत इरादे वाले दुराचारी नाटकी होने, या दोनों के दोषी हैं। किसी भी मामले में, वे प्रत्यक्ष व्याख्या के सिद्धान्त के अनुसार खोटे हैं।

> जो कोई भी अपना मत या दर्शन स्थापित करना चाहता है वह निश्चय ही किसी भी शास्त्र की व्याख्या प्रत्यक्ष व्याख्या के सिद्धान्त के अनुसार नहीं कर सकता। (श्री चैतन्य-चरितामृत 2.25.49)

जीबीसी का प्रस्ताव

जीबीसी केवल SAC के परामर्श के आधार पर एक प्रस्ताव कैसे पास कर सकता है? खासकर यह देखते हुए कि सामाजिक मुद्दो पर भूतकाल में भी SAC के कई अनुसंधान पेपरों को बुरी तरह से खारिज़ किया गया है । SAC के 2005 के स्त्री-दीक्षा-गुरु के समर्थनवाले पेपर को ही लें, जिसे 2009-2010 में मेरे द्वारा इस्कॉन इंडिया का प्रतिनिधित्व करते हुए **लिखे गए पेपर द्वारा** चुनौती दी गई थी। इसके अलावा, **SAC का 2013 का स्त्री-दीक्षा-गुरु के विषय पर जो पेपर था** उसने अपनी खराब गुणवत्ता के कारण कभी भी दिन का प्रकाश नहीं देखा। इस्कॉन इंडिया की ओर से, फूट के करीब पहुँच रहे पर्याप्त प्रतिरोध के कारण ही जीबीसी ने स्त्री-दीक्षा-गुरु पर अपने रुख का पुनर्मूल्यांकन किया है, जिससे उन्हें इस पर रोक लगाना पड़ रहा है।

ऐसे मुद्दों पर ऐतिहासिक प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए, जीबीसी ने विरोधी विचारों को आमंत्रित करने से पहले एक प्रस्ताव पारित करने में जल्दबाजी क्यों की? विशेष रूप से (जैसा कि हमने प्रदर्शित किया है) जब SAC के तर्कों में स्पष्ट रूप से बहुत बड़ी त्रुटियाँ हैं। (और यह तो सिर्फ शुरुआत है।)

जीबीसी के प्रस्ताव को देखते हैं, इसका सबसे गंभीर हिस्सा तो समस्या को और अधिक जटिल और धूंधला बना देता है:

> **2.** दूसरी दीक्षा में, दीक्षा देने वाले गुरु वहीं विशिष्ट सात मन्त्र देंगे जो श्रील प्रभुपाद ने सभी दीक्षितों को दिए थे, जिसे हम **ब्राह्मण-दीक्षा** या दूसरी दीक्षा कहते हैं, और उन्हें इन मन्त्रों का दिन में तीन बार जप करने का निर्देश देंगे --- (सुबह में, मध्याह्न में, सायं काल में) ।
>
> **3.** प्रथम और दूसरी दीक्षा के समय उन उन प्रणों को और उन सभी मन्त्रों को पूरी तरह से प्राप्त करने के लिये कौन अधिकारी (योग्य) है इस विषय में **न तो गुरु,** न ही जो दीक्षा के लिये अनुशंसा (recommendation) देने वाले भक्त है वे **इन किसी भी आधार पर भेद कर सकते हैं**---जन्म, राष्ट्रीयता, वंश, जाति, पूर्व संस्कार , वैवाहिक स्थिति, लिंग, या **वर्णों में विभाजन (जैसे कि व्यावसायिक कार्य)**।

"हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हर किसी को ब्राह्मण बनना होगा"

यदि मैं इसे सही ढंग से पढ़ रहा हूँ , तो जीबीसी इस बात पर जोर दे रही है कि, ब्राह्मण[47] दीक्षा के लिए, किसी को ब्राह्मण गुण धारण करने की आवश्यकता नहीं है ! यह

---

[47] हालांकि यह सच है कि कृष्ण की वैदिक संस्कृति में, वैश्यों और क्षत्रियों को भी उपनयन मिलता था, किन्तु इस बात के भी प्रचुर प्रमाण हैं कि श्रील प्रभुपाद ने इस्कॉन की कल्पना ब्राह्मणों के निर्माण करने वाली एक संस्था के रूप में की थी ।

वर्णाश्रम-धर्म को लागू करने का एक मनगढ़ंत तरीका है ।[48] चाहे कोई कब्र खोदने वाला हो, ऑटो मैकेनिक हो, स्टोर क्लर्क हो, या किसी वेतनभोगी कर्मचारी (शूद्र) के रूप में काम कर रहा हो, उसे भी अभी ब्राह्मण के पद पर घोषित किया जाना होगा। मेरा मानना है कि वे लोग इसे "प्रगतिशील" मानते है। इसके विपरीत, वास्तव में किसी पुरुष के लिए वर्ण[49] में गुण और कर्म शामिल होते हैं, जहाँ कर्म उसके गुण के अनुरूप कार्य होता है । जीबीसी का प्रस्ताव सीधे तौर पर इस्कॉन के लिए श्रील प्रभुपाद के मार्गदर्शन का खंडन करता है। श्रील प्रभुपाद ने "फ़र्जी ब्राह्मणों" के विचार का विरोध किया है, ऐसे ब्राह्मण जो ब्राह्मण के मानकों को पालन करने के प्रति उत्साही नहीं होते । उन्होंने ऐसे भक्तों को दूसरी दीक्षा देने के विषय में चेतावनी दी है । श्रील प्रभुपाद ने इस बात पर जोर दिया कि हर

---

[48] इस बात के प्रचुर प्रमाण हैं कि श्रील प्रभुपाद इस्कॉन में वर्णाश्रम-धर्म की स्थापना करना चाहते थे । सुदामा को लिखा पत्र, जिसे हमने नीचे उद्धृत किया है, दृढ़तापूर्वक सुझाव देता है कि ब्राह्मणीय दीक्षा इसका अभिन्न अंग थी। उन उद्धरणों के संग्रह के लिए जिनमें श्रील प्रभुपाद इस बात पर जोर देते हैं कि वर्णाश्रम-धर्म की स्थापना उनका अगला प्रोजेक्ट है : https://guru-sadhu-sastra.blogspot.com/p/varnasrama-srila-prabhupadas-plan-for.html

[49] स्त्रियों का कोई वर्ण नहीं होता; क्यों? क्योंकि जबकि स्त्रियों मेंअलग-अलग गुण होते हैं, लेकिन उन सभी का कर्म एक ही होता है -- स्त्री-धर्म -- जैसा कि श्रीमद्भागवत 7.11.20-25 में उल्लिखित हुआ है। यह एक बड़ा विषय है जिस पर हम बाद में कभी विस्तार से चर्चा करेंगे ।

किसी को ब्राह्मण नहीं बनना चाहिए और जो लोग ब्राह्मण सिद्धान्तों का पालन नहीं करते हैं उन्हें पुनः शूद्र बन जाना चाहिए ।

गायत्री दीक्षा की सिफ़ारिश करते समय टेम्पल प्रेसिडेन्टों को बहुत ही सावधान रहना चाहिए । आख़िरकार, हम फ़र्जी जाति ब्राह्मणों की आलोचना कर रहे हैं, **यदि हम स्वयं फर्जी ब्राह्मण हैं तो हमारी स्थिति बहुत खराब है। अब क्योंकि हम और अधिक प्रयास कर रहे हैं समाज के वर्णाश्रम विभाजन को लागू करने का, हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हर किसी को ब्राह्मण बनना होगा।** उदाहरण के लिए आप वहाँ एक फार्म विकसित कर रहे हैं; इसलिए जो लोग खेतों में काम करते हैं, तो उनका ब्राह्मण होना जरूरी नहीं है, यदि वे ब्राह्मण मानकों के प्रति इच्छुक नहीं हैं । इस प्रकार, दूसरी दीक्षा देने में सावधानी बरतें। (सुदामा को पत्र, रोम, 26 मई 1974)

अब इस बात की जाँच होनी चाहिए कि क्या तथाकथित ब्राह्मण वास्तव में ब्राह्मण नियामक सिद्धान्तों का पालन कर रहे हैं और नियमित रूप से मन्त्र का जप कर रहे हैं। **अन्यथा उन्हें पुनः शूद्र बना देना चाहिए।** यदि हम केवल धागा प्राप्त करके अपने आप को सुरक्षित करले किन्तु सही से पालन नहीं करें, तो यह क्या है? इसकी परिक्षा होनी चाहिये । प्रत्येक व्यक्ति से कहा जाना चाहिए, "अब इस

गायत्री-मन्त्र का जप करें ।" (सुबह की सैर - 12 दिसंबर, 1973, लॉस एंजिल्स)

श्रील प्रभुपाद केवल कृष्ण के वैदिक मानक को दोहरा रहे थे कि एक ब्राह्मण को उसके व्यवसाय, उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य से जाना जाता है।

न योनिर नापि संस्कारो

न श्रुतं न च संततिः ।

कारणानि द्विजत्वस्य

वृत्तं एव तु कारणम् ॥

"इसलिए, न तो किसी के जन्म का स्रोत, न ही उसका संस्कार, न ही उसकी शिक्षा, एक ब्राह्मण होने की कसौटी है । वृत्त, या व्यवसाय (कार्य) ही वास्तविक मानक है जिसके द्वारा किसी को ब्राह्मण के रूप में जाना जाता है ।" (महाभारत, अनुशासन पर्व 143.50)

इससे पता चलता है कि श्रील प्रभुपाद ने शुरुआत में दूसरी दीक्षा के संबंध में उदारता दिखाई लेकिन बाद में मानकों को कड़ा कर दिया। इसका तात्पर्य यह है कि कृष्ण की वैदिक संस्कृति के मूल मानदंड पर वापस लौटना अनुचित नहीं है अपितु अपेक्षित या वांछनीय है, जिस संस्कृति के मानदंडों में महिलाओं को ब्रह्म-गायत्री प्राप्त करने से बाहर रखा गया है ।

जीबीसी इस मामले पर श्रील प्रभुपाद के सीधे निर्देश के साथ अपने संकल्प को कैसे समेटेगा?

इस विषय पर हमारी स्थिति यह है कि यद्यपि यह बिल्कुल सत्य है कि जाति, वर्ग, सामाजिक स्थिति या लिंग की परवाह किए बिना हर कोई भी व्यक्ति पञ्च-संस्कार के माध्यम से पञ्चरात्रिक दीक्षा प्राप्त करने के लिए पात्र है और इस प्रकार एक वैष्णव के रूप में दीक्षित किया जा सकता है, और इस प्रकार पवित्र नाम का उच्चारण करने और पञ्चरात्रिक विधान के अनुसार अर्चाविग्रह की पूजा करने के लिए पात्र हो सकता है,[50] किन्तु यही बात उपनयन -- पवित्र उपवीत और ब्रह्म-गायत्री को प्राप्त करने के विषय लागू नहीं होती है । ये दो अलग-अलग दीक्षाएँ हैं जिन्हें गलत ही एक समझ लिया गया है जिसका कारण है उनके प्रशासित होने के तरीके, इस्तेमाल किए गए नामकरण और सामाजिक परिवेश ।[51]

प्रत्येक व्यक्ति की पहली दीक्षा में पञ्च-संस्कार के कुछ अंश शामिल होते हैं, जबकि उनकी दूसरी दीक्षा में बाकी बचे पञ्च-संस्कार है, और इसके साथ वैदिक उपनयनम है जो केवल योग्य पुरुषों के लिए है।

---

[50] स्त्रियों और शूद्रों के लिये मात्र घर में ही पूजा का विधान है ।

[51] श्रील प्रभुपाद की गुरु-बहनें, जो स्त्री-धर्म का पालन कर रही थीं और कृष्ण की वैदिक संस्कृति को जानती थीं, उन्होंने यह गलती नहीं की।

अभी भी एक स्त्री भक्त पञ्च-संस्कार पूरा करके दूसरी दीक्षा प्राप्त कर सकती है , लेकिन वह वैदिक उपनयनम -- पवित्र उपवीत और ब्रह्म-गायत्री प्राप्त करने के लिए **पात्र नहीं है।**

दीक्षा के चरणों के नामधेय में परिवर्तन का सुझाव

भ्रम को दूर करने और अधिक स्पष्टता लाने के लिए हमारा सुझाव है कि जीबीसी दीक्षाओं के नामकरण में बदलाव पर विचार कर सकता है (या नहीं भी)। कुछ इस तरह:

- **प्रथम पञ्चरात्रिक दीक्षा --** तीन पञ्च-संस्कार दिए जाते है (ऊर्ध्वपुण्ड्र, ताप, और दास्य नाम)

- **द्वितीय पञ्चरात्रिक दीक्षा --** याग संस्कार के साथ (गुरु बीज, गुरु गायत्री , आदि ६) मंत्र संस्कार में प्रदान किए जाते हैं

- **वैदिक उपनयन --** पवित्र उपवीत और ब्रह्म-गायत्री मन्त्र प्रदान किये जाते हैं

पुरुष और महिलाएँ पहली और दूसरी पञ्चरात्रिक दीक्षा के लिए पात्र हैं।

किन्तु केवल योग्य पुरुष (अर्थात ब्राह्मण प्रवृत्ति और कार्य वाले पुरुष) ही वैदिक उपनयन के लिए पात्र हैं ।

इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि यह पञ्चरात्रिक दीक्षा है जो अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें पवित्र नाम का जप

और कीर्तन करने की, तथा अर्चाविग्रह की पूजा करने की अनुमति देती है, और यही उपयुक्त प्रकृति के पुरुषों को उपनयन प्राप्त करने के लिए भी योग्य बनाती है ।

अंतिम टिप्पणियाँ

हमने दिखाया है कि SAC संशय निवारण कर वास्तविक अर्थ को समझने के लिए कृष्ण की मीमांसा प्रणाली के बजाय "हेर्मेनेयुटिक्स" की यवन प्रणाली को नियोजित करता है। और कि उस SAC ने, अपने मनगढ़ंत "हेर्मेनेयुटिक्स" का उपयोग करके श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के मनोऽभीष्ट को भी नजरअंदाज कर दिया है। और यह कि जीबीसी ने यह देखने की प्रतीक्षा किए बिना ही कि SAC पेपर पर कोई प्रतिक्रिया हुई या नहीं, जल्दबाजी में एक गंभीर त्रुटिपूर्ण प्रस्ताव पारित कर दिया -- जो एक ऐसा तथ्य है जिसे उचित स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

SAC में स्पष्ट अक्षमता और भ्रष्टाचार के बावजूद (नीचे देखें), और जीबीसी को इस गड़बड़ी के बारे में लंबे समय से पता होने के बावजूद भी हम उनसे SAC को खारिज़ करने या इसके नेता उर्मिला दासी को हटाने की उम्मीद नहीं करते हैं। क्यों? क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि GBC की SAC के साथ मिलीभगत है और SAC GBC को वह उत्पाद प्रदान करता है जो वे चाहते हैं। जैसा कि मुकुंद-दत्त प्रभु -- SAC के संस्थापक सदस्य (और बाद में पर्दाफ़ाश करने वाले), जिन्होंने अंततः प्रमुख SAC

कार्यकर्ताओं के लगातार अनैतिक व्यवहार के कारण इस्तीफा दे दिया -- उन्होंने 2014 में लिखा था :

> सच कहूँ तो, मुझे लगता है कि वर्तमान SAC और इसका हालिया [2013] का पेपर दोनों ही पक्षपातपूर्ण स्वार्थों से दूषित हैं। मेरे इस विचार के पिछे आंशिक रूप से निम्नलिखित कारण है:
>
> **4. एक ही प्रकार के निष्कर्ष को बल देने हेतु** पहले से मौजूद SAC की सदस्यों की संख्या को दूसरों से भर दिया गया था; मैंने देखा कि एक लक्ष्य-उन्मुख कार्यप्रणाली डिफ़ॉल्ट रूप से काम कर रही है -- **जैसे कि परिणाम तो एक पूर्व निर्धारित निष्कर्ष है ऐसा मान लिया गया हो,** जो SAC अनुसंधान को मूल्यहीन औपचारिकता बना कर रख देता है।
>
> सौजन्य -- "शास्त्रीय सलाहकार समिति के राजनीतिक रूप से प्रेरित गलत कार्य"

SAC जीबीसी को उनके कार्यों के समर्थन लिए कुछ संभवित लगते प्रमाण देता है और इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिये हम किसी भी बदलाव की उम्मीद नहीं करते हैं क्योंकि SAC बिल्कुल वही कर रही है जो जीबीसी चाहती है -- एक सहायता अपने चल रहे अभियान में, इस्कॉन को नारीवाद जैसे आधुनिक रुझानों के अनुरूप लाने के और वर्णाश्रम-धर्म के बारे में श्रील प्रभुपाद की इच्छाओं को इस्कोन से दूर करने के ।

सामाजिक मुद्दों पर अपने द्वारा प्रकाशित हर नए पेपर के साथ, SAC यह साबित करती है कि अपनी स्थापना के बाद से पिछले कुछ वर्षों में यह कितनी गलत प्रेरणा वाली हो गयी है। पिछली

सदी के अन्त में, पूर्णचंद्र महाराज ने मूल रूप से एक ब्राह्मण समूह की कल्पना की थी जो जीबीसी को सलाह दे सके -- इस्कॉन के भीतर वर्णाश्रम-धर्म को लागू करने के श्रील प्रभुपाद के आदेश को पूरा करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम। इसके विपरीत, SAC धीरे-धीरे सामाजिक-राजनीतिक क्रान्तिकारी के एक प्रमुख समूह के रूप में कार्य करने के लिए अपहृत हो गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य श्रील प्रभुपाद के आदेशों में रुकावट डालना प्रतीत होता है। कम से कम उर्मिला दासी के इसकी अध्यक्ष बनने के बाद से तो यह स्पष्ट पथ है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि यह तो केवल बाढ़ की शुरुआत है, श्रील प्रभुपाद के गंभीर अनुयायियों के लिए उचित सिद्धान्त और मार्गदर्शन देने हेतु विस्तृत बिंदु-दर-बिंदु खंडन तैयार किये जा रहे हैं।

अग्रिम पठन के लिये सामग्री का सुझाव

वैदिक वाङ्मय में आपस्तंब धर्म सूत्र की स्थिति

मनु-संहिता की रक्षा में

पञ्चरात्र का परिचय (इस प्रणाली का एक संक्षिप्त अवलोकन)

पञ्चरात्र ग्रंथ और मध्वाचार्य -- मान्यता प्राप्त माध्व विद्वान वीरनारायण पांडुरंगी द्वारा यह पेपर पञ्चरात्रों के बारे में मध्वाचार्य के विचारों का पर्याप्त प्रमाण देता है।

इसी विषय पर एक वीडियो चर्चा श्रीपाद भक्तिविकास स्वामी द्वारा: “ब्राह्मण-दीक्षा के संबंध में मेरी नीति”

(https://www.youtube.com/watch?v=uLFBxCk2l9Q)